शोध मंथन, Impact Factor 6.726 (SJIF), UGC No. 40908 ISSN: (P): 0976-5255 (e): 2454-339X
Vol. X, No.II, pp (511-515) April - June 2019

महिलाओं के सांस्कृतिक विकास में शैक्षणिक विकास की उपयोगिता

दीपक कुमार
शिक्षा शास्त्र, नेट
Email: kumaryadavdeepak05@gmail.com

सारांश

भारत की सभ्यता और संस्कृति अत्याधिक पुरानी है और समय के साथ–साथ हमारी संस्कृति में काफी उतार–चढ़ाव भी आए हैं। इन्हीं उतार–चढ़ावों के कारण भारतीय परंपरा में 'जिज्ञासा की भावना' को बल मिला। प्राचीन भारत में मौखिक–संस्कृति के माध्यम से ज्ञान का प्रसार एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में होता है। वैदिक युग से लेकर आज के आधुनिक युग तक भारत में ज्ञान एवं शिक्षा के प्रचार–प्रसार में अनेकों विविधताएं देखी जा सकती हैं लेकिन एक बात जो हमेशा अपरवर्तित रही है वह यह है कि महिलाओं में शिक्षा का प्रसार सदैव से ही अपेक्षाकृत कम रहा है। विकास के लिए शिक्षा का होना अति आवश्यक है क्योंकि बात चाहे हम वैज्ञानिक विकास की करें या सांस्कृतिक विकास की, बात चाहे हम राजनैतिक विकास की करें या सामाजिक विकास, हर प्रकार के विकास के लिए शिक्षा का होना आवश्यक है। उदाहरण के लिए हम महिला राजनीति की बात कर सकते हैं।

प्रस्तावना

''**शिक्षा को किसी भी वर्ग के विकास का पैमाना माना जा सकता है। दुनियाभर में देखा गया है कि अधिक शिक्षित लोग अधिक विकसित होते हैं। ऐसा ही विभिन्न देषों के मामले में भी होता है। वही देश आज विकास की दौड़ में सबसे आगे हैं जहां शिक्षा का प्रतिशत अधिक है।**''[1] हमारा देश आज तक विकसित देशों की सूची में अपना स्थान नहीं बना पाया है तो इसका एक प्रमुख कारण यही है कि हमारे यहां शिक्षा का प्रचार–प्रसार बेहद कम हैं। औरतों के मामले में तो स्थिति और भी अधिक खराब है।

भारतीय राजनैतिक आकाश में महिलाओं की संख्या लगभग नगण्य ही है। उनकी न तो राजनीति में भागीदारी है और न ही सत्ता में हिस्सेदारी। और तो और पंचायतों में 33 फीसदी आरक्षण के सहारे जो औरतें पंचायतों के लिए चुनकर आ भी रही हैं, वे भी राजनीति में कुछ खास नहीं कर पा रही हैं। अधिकतर पंचायतों में निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों के स्थान पर उनके पुरूष रिश्तेदार ही राजनीति करते हैं। यह दुर्दशा सिर्फ इसलिए है क्योंकि हमारे यहॉ महिलाओं के बीच शिक्षा का प्रसार बेहद कम हैं। जब महिलायें शिक्षित ही नहीं हैं तो हम उनके विकास की कल्पना भी कैसे कर सकते हैं।

यह शिक्षा की कमी ही है कि आज महिलायें आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर नहीं हैं। वे मेहनत तो पूरी करती हैं लेकिन देश के आर्थिक नियोजन में उनकी कोई भागीदारी नहीं है। ''**महानगरों की कुछ मुट्ठीभर औरतों की बात अगर हम छोड़ दें तो भारत की अधिकतर महिलाएं आर्थिक रूप से परतंत्र ही हैं। वे स्वतंत्र रूप से कोई निर्णय नहीं ले सकतीं क्योंकि उनके पास आर्थिक स्त्रोत नहीं हैं। इस सारी दुर्दशा का बस एक ही कारण है शिक्षा की कमी।**''[2]

भारतीय समाज में महिला शिक्षा की बहस गति शताब्दी में केवल इस प्रश्न के चारों ओर घूमती रही है कि यह 'अत्यन्त आवश्यक है' और इसके लिए बालिका विद्यालय और गर्ल्स कॉलेज खोले जाने चाहिए। लड़कियां डिग्रीधारी औपचारिक शिक्षा लेने के उपरान्त सरकारी नौकरी करें और वर्जनाओं और अवरोधों से भरे वातावरण से लड़खड़ाती हुई अपने परिवार के विकास के अवसर ढूंढ़ें।

इन सब अभियानों ने एक नगण्य से शहरी महिला वर्ग को थोड़े से अवसर दिये हैं और वे संघर्ष करती हुई जीवन के सभी क्षेत्रों में अपनी पहचान भी बना सकी हैं, पर जिसे 'सर्व महिला शिक्षा' कहा जाना चाहिए वह सम्पूर्ण भारत के समाज और संस्कृति के संदर्भ में अभी आरम्भ भी नहीं हो सकी है। ''**यदि शिक्षा के अधिकार को पूरी ईमानदारी और गम्भीरता से लागू किया गया तो शायद तीन–चार पीढ़ियों के बाद पूरे देश में ऐसी स्थिति आ सकती है कि जो बैल्जियम, स्वीडन, हॉलैण्ड या सोवियत यूरोपियन में आज ही उपलब्ध है।**''[3]

वहां प्रश्न अब यह नहीं रहा कि उन्हें पढ़ाया जाये बल्कि यह है कि उन्हें क्या पढ़ाया जाये और कैसे पढ़ाया जाये जिससे वे समान रहते हुए अपनी जैण्डर की भिन्नता के साथ न्याय कर सकें? महिला शिक्षा के क्षेत्र में केन्द्रीय प्रश्न यह है कि समाज, सरकार या एक महिला स्वयं अपने आपको क्या बनना चाहती है? **इसका उत्तर हमारा संविधान तो साफ–साफ शब्दों में दे चुका है कि 'जैण्डर' के आधार पर कोई भेदभाव सवीकार नहीं किया जायेगा इसलिए समाज और परिवार की यह बहस अब बेमानी है कि महिला का शरीर, व्यक्तित्व और भूमिकाएं पुरूषों से भिन्न हैं, अतः उन्हें नौकरियों के लिए पढ़ाकर तैयार किया जाना उचित नहीं है।**''[4] संविधान में दिया गया समानता का अधिकार केवल लैंगिग भेदभाव को ही नही मिटाता बल्कि 'अवसर की समानता और कानून के सामने की समानता को भी न्यायिक गारन्टी के साथ देश की सभी महिला नागरिकों को प्रदान करता है।

नारी जीवन प्रत्येक दृष्टि से पुरूष का जैसा है और मातृत्व की जो दैहिक भिन्नता है वह असमानता न बने इसके लिए अवसरों की समानता का विस्तार किया जाना आवश्यक है। घरेलू हिंसा और यौन उत्पीड़न अथवा शोषण के अपराधों में हमारे न्यायालय नारी देह की भिन्नता को एक महिला की अक्षमता नहीं मानते, किन्तु शिक्षा के अभाव और अनिश्चितता के कारण नारी की 'निर्णय क्षमता' को कमजोर मानते हुए पुरूषों को अधिक दण्डित करते हैं। वैसे यह स्थिति सारे संसार में इसी प्रकार की है, किन्तु इस दुर्बलता के लिए महिला–समाज और महिला–शिक्षा

का वह ढॉचा अधिक उत्तरदायी है, जो समानता में भिन्नता को स्वीकार नहीं करता। महिला शिक्षा के तीन पहलू विचारणीय है–

1– प्रथम तो प्रत्येक महिला को इतनी और इस प्रकार से शिक्षित किया जाना चाहिए कि वह एक स्वावलम्बी जिन्दगी जी सके। पिता, पति और पुत्र के तीनों सहारे उसकी मदद कर सकें। यहां तक तो ठीक है, किन्तु वह इन सहारों के बिना यदि जी ही न सके तो उसका जीने का मानव अधिकार सुरक्षित नहीं रह सकता। संसार में जीने वाला प्रत्येक प्राणी एक इकाई है और उसे जीवित रहने के लिए एक जीविका चाहिए। यह जीविका ऐसी न हो कि एक महिला किसी भी मोह से पराश्रित बन जाये। वह अपनी इच्छा से कोई भी कार्य चुनें, किन्तु सामान्य और आकस्मिक स्थितियों में उसकी जिन्दगी संकटों में न उलझें, इसके लिए एक रोजगारोन्मुखी शिक्षा आवश्यक है।

महिला शिक्षा का पहला उद्देश्य तो वह 'स्वावलम्बन' है जो नारी–जीवन की पराश्रितता को कम–से–कम बना सके। नारी जीवन के अधिकतर दुर्भाग्य इसी आश्रितता से जन्मे हैं और इस आश्रितता की जड़ में जो मान्यता देखी जा सकती है वह यह है कि 'महिला एक आर्थिक व्यक्ति न होकर एक सांस्कृतिक प्राणी है।''5 इस मान्यता ने बेटी, पत्नी और मां की भूमिकाओं में एक महिला को अशिक्षित या कुशिक्षित बना दिया है जिसके फलस्वरूप उसका परिवार दरिद्रता और समाज के अनाचार तथा शोषण के कुचक्रों में उलझा हुआ लगता है। **आर्थिक स्वावलम्बन नारीत्व को स्वाभिमान देता है। अतः महिला शिक्षा में तो व्यवसाय या जीविका कमाने की तैयारी पुरूषों से भी अधिक होनी चाहिए जिससे वे अपने पति की सहायता कर सके तथा अपनी सन्तान को भी अपनी कमाई से पाल सके।''**[6]

2– महिला शिक्षा का दूसरा पहलू है व्यक्तित्व निर्माण। यह व्यक्तित्व धीरे–धीरे विकसित होता है, किन्तु इसके लिए शिक्षा का एक न्यूनतम आधार आवश्यक है। मनोवैज्ञानिकों का मत है कि व्यक्ति का यह व्यक्तित्व नाना प्रकार की क्षमताओं में प्रस्फुटित होता रहा है और शिक्षित पुरूष तथा महिला अपनी इन क्षमताओं का यथाइच्छा निर्माण और विस्तार दोनों ही कर सकते हैं। इस क्षमता निर्माण के पीछे मनुष्य की एक बौद्धिक क्षमता होती है जिसे 'निर्णय क्षमता' भी कहते हैं। शिक्षित व्यक्ति इस निर्णयन क्षमता से तरह–तरह की अन्य क्षमताओं को विकसित कर वह सब प्राप्त कर सकता है जिसे पाने की योग्यता और प्रतिभा उसके व्यक्तित्व में अन्तर्निहित होती है।

महिला जीवन की यह क्षमता शिक्षा के आधार के बिना अधलिखी रह जाती है और पीड़ाओं से जूझते हुए वे अपने परिवारों को भी वह सब–कुछ नहीं दे पाती जितनी उनमें क्षमता है। अतः नारी शिक्षा की योजना ऐसी होनी चाहिए कि पुरूषों की भांति उनके व्यक्तित्व का भी सर्वांगीण विकास हों सकें।''7 वे डॉक्टर, इन्जीनियर, मैनेजर, अधिकारी, खिलाड़ी, साहित्यकार, राजनेता आदि के सब प्रकार के कैरियर चुन सकें और जैण्डर की चेतना उनके व्यक्तित्व को कुण्ठित न बनाये। शिक्षा का बौद्धिक पहलू पुरूष और

महिलाओं दोनों के लिए ही एक जैसा माना जाना चाहिए और उच्च शिक्षा के क्षेत्र में तो जैण्डर का कोई भी भेदभाव किसी भी कारण से स्वीकार ही नहीं किया जा सकता।

3– महिला शिक्षा का तीसरा पहलू इस तथ्य की भी उपेक्षा नहीं कर सकता कि सर्वशिक्षा का उद्देश्य सभी महिलाओं को उन चुनौतियों और जिम्मेदारियों के लिए तैयार करना भी है जो पुरूषों के जीवन में उस रूप में नहीं आती जिस रूप में वे महिला जीवन को झकझोरती है। ये चुनौतियां दो क्षेत्रों में गम्भीर हैं–

क– प्रथम तो पत्येक महिला को अपने देह की सुरक्षा के लिए चौकन्ना रहना पड़ता है। पुरूषों द्वारा हर उम्र में नारी देह के साथ बलात्कार या यौन उत्पीड़न एक ऐसा अपराध है जिससे अपनी रक्षा करने के लिए प्रत्येक महिला में एक विशेष प्रकार की चेतना और क्षमता आवश्यक है। इसका विलोम सही नहीं है जिसके कारण किसी भी पुरूष को महिलाओं से या अकेले होने की स्थिति में भय नहीं लगता। यह जैण्डर सुलभ सुरक्षा दैहिक से अधिक मनोवैज्ञानिक है और विवाह और मातृत्व के बाद भी इस यौन उत्पीड़न के भय से सारे संसार की महिलाएं एकान्त की स्थिति में सहज अनुभव नहीं करती।

निष्कर्ष

नारी शिक्षा का एक अन्य पहलू महिला की उस भूमिका से जुड़ा हुआ है जो केवल नारी की ही है और पुरूष उसमें सहभागी होते हुए भी उसे अनुभव नहीं कर सकता। बच्चे केवल महिलाएं ही पैदा करेंगी और विज्ञान की अविश्वसनीय प्रगति के बावजूद भी पुरूष में यह प्रजनन क्षमता पैदा नही की जा सकती। इसलिए व्यक्तित्व विकास की समस्त सम्भावनाओं की समानता के बावजूद भी एक महिला को 'जननी शिक्षा' दिया जाना आवश्यक और उपयोगी है। उसे अपने शरीर की बनावट का ज्ञान और प्रजनन क्षमता की विशिष्टता समझनी होगी, क्योंकि मातृत्व की दैहिक विशिष्टता को जाने बिना वह अपने तथा अपने बच्चे के जीवन के अधिकार के साथ न्याय नहीं कर सकेगी। सामान्य शिक्षा उसे एक अच्छा नागरिक बना सकती है, किन्तु अपनी सन्तान का गर्भस्थ विकास, स्तनपेयी भूमिका, लालन–पालन के संस्कार, शैशवावस्था के बाल रोगों से बचाव और बाल मनोविज्ञान के अनेक क्षेत्र ऐसे हैं जिन्हें महिला शिक्षा का एक विशेष भाग बनाया जाना आवश्यक है। यह ज्ञान प्रजनन की जटिलताओं को समझने से अधिक एक नवजात को स्वास्थ्य और संस्कार देना है जो हर मां का एक पुनीत कर्त्तव्य है और एक शिशु का बाल अधिकार भी।

सन्दर्भ ग्रंथ

1– प्रतिभा यादव– *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक,* साहित्य प्रकाशन आगरा, संस्करण 2006, पृ. **31**

2– सुरेश भटनागर– *भारत में शिक्षा व्यवस्था का विकास,* प्रकाशक आर.लाल बुक डिपो मेरठ, संस्करण 2004, पृ. **215**

3– राम अहूजा– *भारतीय समाज,* रावत पब्लिकेशन जयपुर, संस्करण 2009, पृ.**103**

4– पी.डी. शर्मा– *हमारा शिक्षा संकट, शिक्षा अधिकार के संदर्भ में,* साहित्य चन्द्रिका प्रकाशन, जयपुर, संस्करण 2014, पृ.**85**

5– गोपा जोशी– *भारत में स्त्री असमानता एक विमर्श,* हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेषालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, संस्करण 2006, पृ. **53**

6– रचना जैन– *भारतीय नारी और समाज,* के.एस.के. पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, संस्करण 2012, पृ. **23**

7– सुशीला नैयर– *भारतीय पुनर्जागरणा में अग्रणी महिलाएं,* नेशनल बुक ट्रस्ट इण्डिया, संस्करण 2005, पृ0.**75**